बंधन एवं मुक्ति (मोक्ष)

यद्यपि जैन दर्शन नास्तिक एवं मूलतः अनीश्वरवादी दर्शन है, फिर भी यहाँ जीवन के चरम अध्यात्मिक लक्ष्य के रूप में मोक्ष की सत्ता को स्वीकार किया गया है। जैन दर्शन में मोक्ष या मुक्ति को 'कैवल्य' कहा गया है। यह कैवल्य क्या है तथा इसकी प्राप्ति के साधन क्या है, इसे समझने के लिए पहले हम बंधन क्या है, यह देखेंगे।

बंधन :→ जैन दर्शन का प्रमुख लक्ष्य ही है- बंधन से मुक्ति।

यहाँ पर बंधन का अर्थ है - जीवन में दुःखों की विद्यमानता तथा जीवन में जीव का जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहना। पुनः यहाँ प्रश्न उठता है कि जीव के दुःख का कारण क्या है? तो उत्तर में जैनों का कहना है कि शरीर बद्ध होना ही इसका प्रमुख कारण है। यह शरीर ही बन्धन है, जिससे छूटकर जीवात्मा मोक्ष की प्राप्ति करती है। किंतु शरीर का त्याग करने वाली प्रत्येक जीवात्मा मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर लेती। सामान्यतया तो शरीर का त्याग करने के बाद जीवात्मा को दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है। पुनः यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि- जीवात्मा शरीर के बंधन में किस प्रकार आती है।

जैन दर्शन में बंधन का कारण 'कषाय' को बताया गया है। अर्थात् बंधन या जीवात्मा के शरीर धारण का कारण उसके पूर्व जन्म के संस्कार होते हैं जो उसके पूर्व जन्म के कर्मफलों के अनुसार निर्मित होते हैं तथा जो जीव के साथ शरीर नाश के बाद भी बने रहते हैं। अतः जीव का अगला जन्म (शरीर धारण) इन संस्कारों (कर्मफल) के अनुसार ही निर्धारित होता है।

जीवात्मा को बार-बार शरीर बंधन में डालने वाले संस्कारों को जैन-दर्शन में 'कषाय' कहा गया है। इनमें मुख्यतः क्रोध, लोभ, मोह, गर्व आदि की कुप्रवृत्तियाँ आती हैं। ये चारों

वस्तुतः जीव की तृष्णाएँ हैं। कषाय का अर्थ होता है ऐसा चिपचिपा पदार्थ जिसमें दूसरे पदार्थ आसानी से चिपक जायें। ये कषाय पुद्गल कणों को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं और इस तरह जीवात्मा का शरीर बनता है। जैसे- जिस प्रकार एक गीले कपड़े में धूल के कण आसानी से चिपक जाते हैं, वैसे ही कषाय में पुद्गल कण आकर चिपक जाते हैं। जैन दर्शन में कषाय की ओर पुद्गल का आना 'आश्रव' (प्रवाह) कहलाता है।

जैन मतानुसार जीव एक चेतन द्रव्य है। यह जीव स्वभावतः अनन्त चतुष्टय (अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनन्त वीर्य, अनंत आनन्द) से युक्त होता है। परन्तु ऐसा जीव अज्ञानता, मानसिक दुष्प्रवृत्तियों एवं पूर्व जन्म की वासनाओं आदि के कारण बंधन में पड़ जाता है। यहाँ बंधन के पाँच (5) कारण बताये गये हैं—

मिथ्यात्व - सत्य-असत्य का विवेक न होना।
अविरति - राग-द्वेष से पृथक न होना।
प्रमाद - लक्ष्य के विमुख प्रयास करना।
कषाय - ये मानसिक दुष्प्रवृत्तियाँ हैं। इसमें लोभ, क्रोध, मान, माया की गणना की जाती है, जो बंधन का कारण है।

इस हेतु जैन दर्शन में दो उपाय बताये गये हैं - संवर, निर्जरा।

(i). संवर → संवर का अर्थ है नये पुद्गलों का आश्रव बंद होना। ये नये पुद्गल कण भविष्य (पुनर्जन्म) में शरीर-बंधन के कारण बनते हैं, अतः इन्हें रोकना अर्थात् आश्रव का बंद होना अत्यन्त आवश्यक है।

(ii). निर्जरा → निर्जरा का अर्थ है - जीव में पहले से प्रविष्ट दुष्ट पुद्गलों का जीर्ण (नाश) होना। अतः मोक्ष हेतु निर्जरा भी अत्यन्त आवश्यक होता है।

इसी प्रकार से जैन मतानुसार, बंधन की प्रक्रिया दो (2) स्तरों पर सम्पन्न होती है - आश्रव और बंध।

आश्रव - कर्म पुद्गलों का जीव की ओर होने वाला प्रवाह ही आश्रव कहलाता है।

बंध - इन कर्म पुद्गलों का जीव से युक्त (जुड़) जाना ही बंध कहलाता है।

पुनः आश्रव भी दो प्रकार के बताए गए हैं - द्रव्य और भाव।

द्रव्य आश्रव - जीव की ओर होने वाले वास्तविक प्रवाह को द्रव्य आश्रव कहते हैं। और

भाव आश्रव - जब पुद्गल कणों का वैचारिक स्तर पर जीव की ओर प्रवाह होता है तो उसे भाव आश्रव कहते हैं।

ठीक इसी तरह से बंध भी दो प्रकार का होता है - भाव, द्रव्य बंध।

भाव बंध → जीव का वैचारिक रूप से कर्म पुद्गलों से युक्त युक्त होना भाव बंध कहलाता है, जबकि

द्रव्य बंध → वास्तविक रूप से जीव का कर्म पुद्गलों से युक्त होना द्रव्य बंध है। यही द्रव्य बंध ही मूल बंधन है। इसे हम संक्षेप में इस प्रकार से समझ सकते हैं -

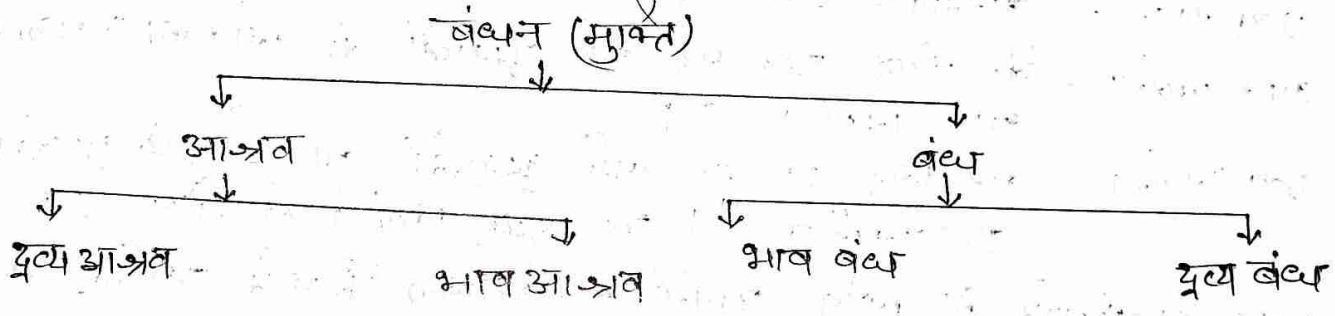

अतः बंधन की स्थिति में जीव एवं कर्म पुद्गल लोहे एवं ताप या द्रव्य एवं पानी की तरह परस्पर घुल-मिल जाते हैं। बंधन की इस स्थिति में जीव के स्वाभाविक लक्षण (अनंत चतुष्टय से युक्त) तिरोहित हो जाते हैं, नष्ट नहीं होते। जैसे कि बादलों से सूर्य का प्रकाश कुछ देर के लिए ढक जाता है, वैसे ही मोक्ष की स्थिति में जीव के स्वाभाविक लक्षण पुनः प्रकट हो जाते हैं। इस प्रकार से बंधन ही समस्त मानव समुदाय / जाति के दुःख का मूल है, जो कष्टकर एवं दुस्साध्य है।